फारूकी विवाद के बहाने-कब बलात्कार, बलात्कार नहीं होता ?

भारत के कानूनी इतिहास में यह पहला मामला है, जब ओरल सेक्स को बलात्कार की श्रेणी में रखा गया है और किसी को सज़ा सुनाई गई है। ये एक महत्त्वपूर्ण फ़ैसला है, क्योंकि इस केस में पहली बार जबरदस्ती ओरल सेक्स को रेप माना गया है और इस केस में महिला की बात को सही और सत्य मानते हुए अदालत ने फारूकी को सात साल की सजा और 50 हज़ार जुर्माना लगाया है। सात साल की सजा एक गंभीर सजा होती है।

- रवींद्र गोयल

16 दिसम्बर 2012 के जघन्य निर्भया बलात्कार और हत्याकांड के फलस्वरूप उभरे देशव्यापी जन आक्रोश ने बलात्कारियों को शीघ्र सजा दिलवाने के सवाल पर देश की संवेदना को आंदोलित किया था।

उससे उभरे आन्दोलनों की ऊर्जा ने सरकार पर बलात्कार कानूनों को बदलने और उन्हें अधिक कठोर बनाने के लिए दबाव बनाया। इसके लिए भूतपूर्व न्यायमूर्ति जे एस वर्मा, गोपाल सुब्रमण्यम और भूतपूर्व न्यायमूर्ति लीला सेठ की सदस्यता वाली जस्टिस वर्मा समिति गठित की गयी। समिति को जनता से सुझाव इकट्ठा कर के सरकार को बलात्कार और महिलाओं के खिलाफ अन्य अपराधों का मुकाबला करने के लिए एक प्रभावी कानून हेतु सुझाव देने की जिम्मेवारी सौंपी गयी। वर्मा समिति के सुझावों को आधार बनाकर जो कानून में संशोधन किये गए, उसमें दो खास बातें हैं। पहला, इस सिद्धांत को मानते हुए कि महिला के शरीर और महिला के अस्तित्व पर केवल महिला अधिकार और मर्ज़ी होनी चाहिए, यह कानून बनाया गया कि किसी महिला से केवल जबरन शारीरिक सम्बन्ध बनाना ही रेप नहीं है, बल्कि रेप की परिभाषा को व्यापक बनाकर किसी भी रूप में महिला के यौनिक शोषण को रेप के दायरे में समेट लिया गया है। रेप संबंधी भारतीय दंड संहिता की संशोधित धारा 376 में रेप के दायरे में ओरल सेक्स तथा महिला के शरीर में किसी भी किस्म के पेनिट्रेशन को भी शामिल कर लिया गया है। दूसरे रेप के मामलों में न्यूनतम सजा सात साल निर्धारित की गयी है। आपराधिक कानून में संशोधन के द्वारा जज द्वारा सजा को 7 साल से कम करने के प्रावधान को भी हटा दिया गया है।

कानून का यह संशोधन महिलाओं को रेप जैसे मामलों में समयबद्ध तरीके से न्याय दिलाने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम था। इसका सभी ने स्वागत किया। अगस्त 2016 तक चर्चा मात्र इस विषय पर हो रही थी कि इस कानून ने कैसे वैवाहिक बलात्कार के कानून में उचित परिवर्तन नहीं किये हैं। वर्मा समिति के इस सुझाव को कि वैवाहिक बलात्कार को भी बलात्कार के कानून के दायरे में शामिल किया जाये, संसद की समिति ने यह कहकर रद्द कर दिया कि ऐसा परिवर्तन भारतीय परिवार प्रणाली में एक भारी तनाव का कारण होगा। प्रगतिशील बुद्धिजीवी और महिला कार्यकर्ता इस सोच का विरोध कर रहे थे। लेकिन अगस्त 2016 में दिल्ली की एक विशेष फ़ास्ट ट्रैक कोर्ट ने पीपली लाइव फ़िल्म के सह- निर्देशक, इतिहासकार और दास्तानगो महमूद फारूकी को बलात्कार के मामले में सात साल की सज़ा सुनाई है (State Govt of NCT of Delhi v. Mahmood Farooqui)। महमूद रोड्स स्कॉलर रहे हैं। उन्होंने दून स्कूल और बाद में दिल्ली सेंट स्टीफ़ेंस से पढ़ाई की। उनकी किताब इन बिसीज्ड: वायसेज फ़ॉम दिल्ली 1857 काफ़ी चर्चित रही है। महमूद फारूकी को पिछले साल दिल्ली के सुखदेव विहार में उनके घर पर एक अमेरिकी महिला से बलात्कार का दोषी पाया गया है। महिला ने आरोप लगाया था कि जब वह अपने शोध के सिलसिले में उनसे मिलने गई थी, तब फ़ारूकी ने उनके साथ बलात्कार किया। जज संजीव जैन ने महमूद फारूकी को धारा 376 के तहत दोषी पाया और उन्हें न्यूनतम सात साल जेल की सज़ा सुनाई।

भारत के कानूनी इतिहास में यह पहला मामला है, जब ओरल सेक्स को बलात्कार की श्रेणी में रखा गया है और किसी को सज़ा सुनाई गई है। ये एक महत्त्वपूर्ण फ़ैसला है, क्योंकि इस केस में पहली बार जबरदस्ती ओरल सेक्स को रेप माना गया है और इस केस में महिला की बात को सही और सत्य मानते हुए अदालत ने फारूकी को सात साल की सजा और 50 हज़ार जुर्माना लगाया है। सात साल की सजा एक गंभीर सजा होती है। इस मामले से समाज में संदेश जाता है कि किसी भी प्रकार की हिंसा महिला के ऊपर, महिला के शरीर के ऊपर गवारा नहीं है। अभियुक्त कोई भी हो, उसको सज़ा दी जाएगी।

बलात्कार के आरोप में महमूद फारूकी की सजा ने धर्मनिरपेक्ष, वामपंथी और नारीवादी लेखकों और कार्यकर्ताओं के बीच एक बहुत ही तीखी बहस को जन्म दिया है। बहस के बिंदुओं पर चर्चा से पहले यह समझ लेना आवश्यक है कि देश के कानून के हिसाब से यदि किसी को सजा मिलती है तो समाज के मुखर तबकों में आखिर बहस क्यों? इसको समझने के लिए यह जानना दिलचस्प होगा की प्रबंध विज्ञान (management science) में सीमित समझदारी का सिद्धांत पढ़ाया जाता है, जिसका मानना है कि व्यक्तियों की समझदारी उनके दिमाग की संज्ञानात्मक सीमाओं तक सीमित है और जब अपनों या अपने जैसों कि गलतियों या आचरण के बारे में कोई राय बनानी हो तो हमारा विवेक भोथरा और कुंद हो जाता है। महमूद फारूकी कोई साधारण आदमी नहीं है। वह समाज के संभ्रांत ऊपरी तबके का सदस्य है। उस या तरुण तेजपाल जैसे लोग महिला के साथ जबरदस्ती यौन सम्बन्ध बनाने कि कोशिश भी कर सकते हैं, यह मानना उनको परेशान करता है और उस पर यदि सजा भी हो जाए तो कई लोगों के सामने एक नैतिक संकट खड़ा हो जाता है और उनको यह लगता है कि सजा पाए शख्श का बचाव करना ही चाहिए।

जो मित्र फारूकी केस के फैसले से परेशान हैं, उनकी 3 मुख्य शिकायतें हैं। सबसे पहली उनकी शिकायत यह है कि यह फैसला दर्शाता है कि कैसे महिलाओं के हितों के नाम पर बनाये गए कठोर कानून पुरुष विरोधी हो जाते हैं और यह केस इस जरूरत को बताता है कि रेप विरोधी कानून को थोड़ा कम कठोर होना चाहिए। तर्क दिया जाता है कि सभी घटनाओं को रेप कहना उचित नहीं है। एक जाने-माने वकील का तर्क है कि अपने ड्राइंग रूम में किसी महिला के साथ जबरन ओरल सेक्स और एक जघन्य सामूहिक बलात्कार में फर्क किया जाना चाहिए। इस तर्क पर कि सभी बलात्कार सामान होते हैं, सब घटनाओं को बराबर मानना ठीक नहीं है, लेकिन इस चिंता का स्रोत शायद कानून कि सख्ती नहीं है। अभी तो इस कानून के अन्तर्गत केवल एक आदमी को सजा हुई है। अभी तजुर्बे के आधार पर यह कहा नहीं जा सकता कि इस कानून के तहत पुरुषों को प्रताड़ित किया जा रहा है और शायद वाचाल वर्ग में इतनी चिंता तब भी न होती यदि सजा किसी हमारे जैसे आदमी को न दी जाती। कानून की चपेट में आये व्यक्ति से उपजी हमदर्दी का कारण इस तथ्य में लगता है कि वह आप और हमारे जैसे संभ्रांत समुदाय का सदस्य है, पर क्या यह कानूनी कार्यवाही पर सवाल उठाने का उचित तर्क है?

इन मित्रों की दूसरी शिकायत यह की इस केस में सम्बन्धित तथ्यों का उचित अध्ययन नहीं हुआ और फैसला जल्दी में सुनाया गया है। घटना 28 मार्च 2015 की है। जून 2015 में केस दायर किया गया। अगस्त 2015 में सुनवाई शुरू हुई और 30 जुलाई 2016 को फारूकी को दोषी करार दे कर सजा सुना दी गयी। दोनों पक्षों के हितों की देखभाल काबिल वकील कर रहे थे और यह मानने का कोई आधार नहीं है कि उन्होंने अपने काम को जिम्मेवारी से नहीं पूरा किया। ऐसे में यह दलील कि फैसला जल्दी में क्यों सुना दिया गया, एक खोखली दलील है। तार्किक मांग तो यह होनी चाहिए कि और मामलों में भी फैसले जल्दी सुनाये जाएं और यहां लोग उलटी गंगा बहाने पर तुले हैं। कई मित्रों ने एक गंभीर खतरे की ओर भी इस फैसले के माध्यम से इशारा किया है। वह खतरा है बंदीवादी नारीवाद (carceral feminism) का, यानी ऐसा नारीवाद जो आज के नव उदारवादी दौर में महिला पर पुरुष द्वारा हिंसा संबंधी शिकायतों का हल पुरुष बंधीकरण में देखता है। यह एक गंभीर बहस है और यह वाजिब सवाल उठाया जा सकता है कि जेल की सजा से कोई सुधरता नहीं है। लेकिन अजीब बात है कि यह तर्क निर्भया केस के आरोपियों को सजा दिलाने के समय नहीं उठाया गया और फिर इसका फारूकी केस से क्या सम्बन्ध हो सकता है। जब तक देश में एक कानून है, तब तक आरोपियों को उस कानून के हिसाब से सजा मिलनी चाहिए।

सारत: कहा जाये तो सभी आलोचनाओं के बावजूद यह फैसला निर्भया बलात्कार-हत्याकांड से उपजे आन्दोलनों की उपलब्धि है और तीन मामलों में महत्त्वपूर्ण है। यह फैसला एक स्पष्ट संदेश देता है कि महिलाओं की स्वीकृति उनके साथ किसी भी प्रकार के यौन सम्बन्ध के लिए अनिवार्य शर्त है। हर महिला अपने शरीर की एक मात्र अधिकारी है और कोई उसकी सहमति के बिना उसके साथ जबरदस्ती खिलवाड़ नहीं कर सकता।

यह फैसला यह भी स्पष्ट करता है कि बलात्कार एक जघन्य अपराध है और इसके दोषी को कानून सम्मत सजा मिलेगी। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आरोपी कौन है, कितना सम्मानित है या कितना प्रभावशाली है।

- आखरी बात, फैसला यह भी दर्शाता है कि यदि उचित कानून और प्रक्रिया मुहैया कराई जाए तो एक समयबद्ध तरीके से आरोपी को सजा मिल सकती है और बलात्कार के शिकार को न्याय मिल सकता है। उम्मीद करनी चाहिए कि भारतीय मध्यम वर्ग की सीमित संवेदना का विस्तार होगा और वह आरोपी की हैसियत के आधार पर अपना पक्ष तय करने के बजाय न्याय के साथ खड़ा होगा औरतुलसी दास कि इस सोच से आगे बढ़ेगा कि 'समरथ को नहीं दोष गुसाईं'।

भगत सिंह ने कहा था - सफेद की जगह काले अंग्रेज !

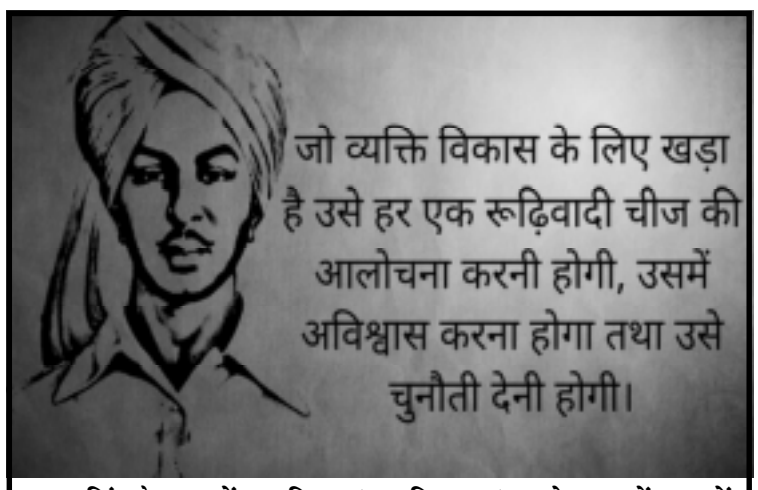

भगत सिंह के 110 वें जन्मदिवस (28 सितम्बर) पर देश भर में युवाओं ने उनके जीवन और विचारों से प्रेरणा ली। शहीद की जेल डायरी में दर्ज मार्क ट्वेन का यह कथन दर्ज है-लोगों के सर कलम कर दिये जाने को तो हम भयंकर मानते हैं, पर हमें जीवन पर्यंत बरकरार रहने वाली मृत्यु की उस भयंकरता को देखना नहीं सिखाया जाता जो गरीबी और अत्याचार द्वारा व्यापक आबादी पर थोप दी गयी है ।

दो-चार बार काम से तो जाना हुआ था, लेकिन आज किसी मित्र के कारण पहली बार राष्ट्रपति भवन एक दर्शक की तरह घूमने का अवसर प्राप्त हुआ.... शुरुआत अन्दर घुसने से हुई... सभी सुरक्षा कर्मी बहुत शालीन और मिलनसार थे, वैसे बिलकुल नहीं जैसी फिल्मों ने उनकी छवि बना रखी है....

उसके बाद शुरू हुई प्रेसिडेंट गार्ड एक्सचेंज सरेमोनी..... एक ऐसा तमाशा जैसा हम बचपन में सर्कस में देखा करते थे... टिकेट यहाँ भी लगा था देखने को.... कड़ी धुप में आर्मी परेड करती रही... बूटों से धुल उड़ाती रही अपने घुटने की हड्डियां चटकाती रही, सिर्फ इसलिए कि हम जैसे कुछ वेल्ले लोग, प्रेसिडेंट की भव्यता को एन्जॉय कर सकें.... जबकि न ही वहां कोई प्रेसिडेंट उपस्थित थे न ही अन्य कोई देश का गणमान्य व्यक्ति... यह सब पचास रूपये वालों के लिए ही था....

उसके बाद शुरू हुआ राष्ट्रपति भवन यानी लुटियन के नवाबों के महल का दर्शन... रोजी गुप्ता बहुत पुरानी, शालीन और जानकार गाइड हैं, जिन्होंने बहुत खूबसूरती से इस इमारत का इतिहास बताया....

इमारत शानदार थी...इसे मेंटेन करने के लिए हजारों माली हजारों सुरक्षा कर्मी सैंकड़ो एडमिन स्टाफ जाने क्या-क्या.. लिविंग रूम शाहाना, पूर्ण राजसी ठाट बाट से परिपूर्ण लेकिन...इस इमारत की मनहूसियत जस की तस बनी हुई है.... वाइसराय हाउस राष्ट्रपति भवन बन गया, बॉल रूम अशोका हाल बन गया.... लुटियन के ठीक सामने लुटियन से बड़ी गांधी जी की प्रतिमा लग गयी लेकिन मनहूसियत न गयी इस इमारत की...

हालांकि जगह- जगह बुद्ध की प्रतिमा और निजामी की फ़ारसी शायरी काफी मशक्कत करती रही के इस इमारत से राजशाही, कुटिल राजनीति, राजनीतिक षड्यंत्रों, आम जनता के दमन के लिए रोज बनते बिगड़ते कानूनों, जनता का खून चूस रहे? दावतों का मजा लेते राजनायिको की मनहूसियत कुछ कम की जा सके, लेकिन कामयाबी नहीं मिली....

कुल मिला जुला कर बेशर्मी है उनकी, कि जिस देश की लाखों जनता सड़क पर सोती हो, करोड़ों जरुरत से छोटे घरों में गुजार रही हो और दसियों करोड़ दो कमरे की खोली भरने में जिन्दगी गुजार रही हो... उसका राष्ट्रपति वहां रहता हो, जहाँ भारत के ठीक ऐसे ही हालातों को नजरअंदाज कर एक अँगरेज हुक्मरान रहा करता था कभी.... आजादी अंग्रेजों से लिए हो तुम या पुराने हुक्मुरान बदल नए काबिज किये बैठे हो???

सोचना कभी.... हो सके तो घूम कर आना.. सिर्फ पचास रूपये ही लगते हैं, वोह देखने में जो मैंने देखा..... काश इसे किसी का घर बनाने के बजाय म्यूजियम ही बनाया गया होता।

- हैदर रिजवी